



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(6): 147-148

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 22-09-2017

Accepted: 23-10-2017

मोहन लाल

शोधच्छात्र पी० एच० डी० संस्कृत
विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू,
भारत

क्रमदर्शन में षडङ्गयोग की अवधारणा एवं उसकी समीचीनता

मोहन लाल

प्रस्तावना

चिन्तन के बदलते आयामों के चलते यहाँ मनुष्यों में विविध प्रकार की विचारधारा पाई जाती है। वही दर्शन के परिपेक्ष्य में भी विविध प्रकार के मतों का उल्लेख हमें देखने को मिलता है। भारतीय दर्शन यहाँ आस्तिक नास्तिक, वैदिक-अवैदिक एवं ईश्वरवादी-अनिश्वरवादी समूहों में यहाँ विभाजित करके पढा जाने लगा। वही धरती के स्वर्ग कहे जाने वाले कश्मीर के उद्भूत प्रत्यभिज्ञा दर्शन, समीक्षकों के द्वारा भारतीय दर्शनों में अपना स्थान की नहीं बना पाया। इसे विधि की विडम्बना कहा जाये या समीक्षकों का एकाङ्गीकृत दृष्टिकोण। त्रिक दर्शन को ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन तथा क्रम दर्शन भी कहते हैं। योगी, योग एवं याग की अवधारणा स्वीकार करने वाले क्रम दर्शन में भारतीय दर्शन के अष्टांग योग की अपेक्षा षडङ्ग योग को ही स्थान मिला है। क्योंकि कश्मीरी शैवाचार्यों का मानना है कि महर्षि पातंजल प्रोक्त यम, नियम आसन केवल साधक की वहिरङ्ग एवं अन्तरङ्ग सोच के साधन माने जाते हैं जो कि समाधि में जाने की प्रारम्भिक अवस्था है जिससे सामान्य व्यक्ति भी अपनाते हैं। क्रम दर्शन में षडङ्ग योग का विधान इस प्रकार है :-

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।

तर्कश्चैत्र समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते।।¹

प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा तर्क और समाधि इन षडङ्गो वाले शास्त्र को योग कहा गया है। महर्षि पातंजलि के द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग चित्त वृत्तियों को नियन्त्रित करने के लिए किया जाता है। क्रम दर्शन में पातंजल योग के यम, नियम और आसन इन तीन अंगों को छोड़ दिया है। शैव, वैष्णव, बौद्ध सभी सम्प्रदायों में षडङ्ग योग की चर्चा मिलती है। गुह्यसमाज तन्त्र में प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम धारणा, अनुस्मृति और समाधि ये षड् योग के अंग माने गये हैं।² अनुस्मृति का अर्थ बार-बार स्मरण करना है। बौद्ध तन्त्र ग्रन्थों में इसका विस्तार से वर्णन है। विष्णु संहिता में प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तर्क, समाधि और ध्यान यह क्रम मिलता है।³ इनमें तर्क के सिवाय अन्य अंग पातंजल योग समंत ही है। इनमें क्रम में भिन्नता मिलती है, किन्तु सर्वत्र तर्क को समाधि के साथ रखा है। क्रम दर्शन के अनुसार केवल सत्तर्क से ही संविद् साक्षात्कार स्वात्म परामर्श होता है। योगसूत्र के अनुसार यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये पांचों वहिरङ्ग साधन हैं, धारणा, ध्यान और समाधि तीनों अन्तरङ्ग हैं।⁴ किन्तु संविद् साक्षात्कार में इनकी भी साक्षात् उपयोगिता नहीं है, धारणा, ध्यान और समाधि त्रितयी की भी संविद् साक्षात्कार में कोई उपयोगिता नहीं है।⁵ यह योगाङ्ग समाधि के उपाय मात्र हैं और समाधि भी स्वात्म परामर्श का ही उपाय है - योग के यम आदि सातों अङ्ग समाधि के उपाय मात्र हैं, यम नियम के नियम आसन के आदि क्रम से एक एक उत्तर उत्तर उपाय होने के कारण योगाङ्ग है। समाधि भी स्वात्म परामर्श में उपयोगी है किन्तु यह भी सत्तर्क रूपी स्वात्मपरामर्श की उपाय ही है। अन्त में उक्त आठों अङ्ग सत्तर्क के लिए ही उपयोगी है।⁶ अष्टाङ्ग योग पातंजलीय योग हैं। क्रम दर्शन में छ अंग मान्य है। इसमें तर्क को सर्वोत्तम योगाङ्ग मानते हैं क्योंकि इसी से स्वात्मपरामर्श और स्वरूप साक्षात्कार होता है। भक्ति तत्त्व में अभेद भाव से रूढ़ और संविद् शक्ति के द्वारा ही अभ्यास के बल पर यम आदि देह में, प्राण में, बुद्धि में भी अर्पित करने योग्य हैं। संविद् नित्योदित पराद्वयदीप्त तत्त्व है। उसमें किसी प्रकार के परिष्कार संस्कार की आवश्यकता नहीं होती या अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। यमादि का यह अभ्यास और उसके होने वाले संस्कार देह प्राण और बुद्धि के संस्कृत होने के लिए उपयोगी है।

Correspondence

मोहन लाल

शोधच्छात्र पी० एच० डी० संस्कृत
विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू,
भारत

आसन आदि से देह संस्कृत होता है। प्राणायाम से प्राण संस्कृत होते हैं। प्रत्याहार से बुद्धि संस्कृत होती है। संवित् में यह बात नहीं। उसके लिए सत्कर्क ही पर्याप्त है।¹⁷

संवित्तत्व में निरूढ यमादि का संचार शरीर, प्राण और बुद्धि में करते हैं। ये सभी संस्कार परिष्कार कर इन्हें ही शुद्ध करते हैं। संवित् को परिष्कृत करने की बात करने और सोचने वालों की बुद्धिमत्ता पर भी सन्देह होता है।¹⁸ यह संभव है कि संस्कृत देह आदि द्वारा संवित् तत्त्व की अभिव्यक्ति में कुछ अतिशय्य हो जाए। पराद्वय दर्शन में ब्रह्म के सर्वरूप और सर्वव्यापक होने के कारण ब्रह्म को अतिक्रान्त कर कोई भी 'प्रदेश' नहीं रह सकता अथवा उसके अतिरिक्त अणु मात्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस नियम के अनुसार देह आदि भी संविद् रूप ही हैं क्योंकि संवित् तत्त्व तो सर्वात्मक है। इसमें अभ्यास से विपरीत का अपोहन सम्भव है एक ओर प्राण देह बुद्धि में यमादि का अभ्यास और उसके विरुद्ध अयम आदि की हिंसा ? यह भेद दृष्टि नितान्त हेय है। हिंसा तो हिंसा ही है। जैसे आत्म हिंसा निन्द्य है, उसी तरह अयम आदि की हिंसा भी निन्द्य है। स्व और पर रूप आभास भेद दृष्टि का परिणाम है।¹⁹

जहाँ-जहाँ अभ्यास होता है, वहाँ संस्कार की दृढता उत्पन्न होती है। एक प्रकार का कौमल उल्लसित होता है। इसमें तो कोई दोष नहीं। इससे अन्य का व्यापोहन (हिंसा) कैसे ? इससे कार्यान्तर की उत्पत्ति भी कैसे ?

ऊँची कूद कूदना एक सुखदायक खेल है। कूदने में गिरना स्वाभाविक है। बाजी लगती है। खिलाड़ी अधिक से अधिक ऊपर कूदकर धन और नाम कमाने का सुख पाना चाहता है। इसके लिए अधिक अभ्यास कराया जाता है। इसमें संपात भी होता है। ऊर्ध्व के साथ अधः पात भी उसका एक पक्ष है। उसकी निवृत्ति होती है। एक क्रिया से दूसरी क्रिया का व्यपोहन हो जाता है। यही यम और अयम आदि में भी होता है। योग शास्त्र इसे स्वीकृत करता है, परन्तु तन्त्र योग इसे स्वीकार नहीं करता है।¹⁰ इसी तरह शिष्य पाठ के चिन्तन में बारम्बार अभ्यास करता है। गुरु द्वारा उक्त वचनों के अनुकूल ही उसमें स्वात्मविमर्श उत्पन्न होता है। इसके फलस्वरूप उसकी मूर्खता आदि दोषों का नाश भी होता ही है।¹¹ गुरु अपने बल पर ही शिष्य को अपना ज्ञान अथवा अपने शब्द उसकी बुद्धि में आरोपित नहीं कर सकता। इसमें शिष्य का अपनी विमर्श आवश्यक है। उसके बिना शिष्य गुरु वचनों का अवधारण भी नहीं कर सकता इसलिये अपने शुद्ध विद्यात्मक उत्तम कोटि के स्वात्मविमर्श की अनिवार्यता होती है। इसी से स्वभावतः दोनों काम एक साथ होते हैं। गुरु वाक्यों का अवधारण होता है। और उसकी मूर्खता अज्ञता आदि दोषों का निराकरण भी होता है।¹² निष्कर्षतः परासंविद् में ऐसे अभ्यास की कोई उपयोगिता नहीं। यह केवल द्वैत के दूषण को निर्मूलन के लिए उपयोगी है।¹³

द्वैत सम्बन्धित चर्चाये तर्क द्वारा ही विमर्श का विषय बनायी जाती है ताकि योगी को योगसिद्धि प्रवर्तक और निवर्तक वस्तु को लक्षित करा दे। इस उक्ति के अनुसार यम आदि द्वैत के निर्मूलन करने वाले हैं। यह बात तर्कों के उपाय होने के कारण परम्परा की दृष्टि से कही गयी है। तर्क ही यमादिकों को अन्तिम कथ्य या लक्ष्य है। वस्तुतः तर्क ही संवित्ति का साक्षात् उपाय है।¹⁴

आधुनिक युग में यदि षडङ्ग योगो की समीचीनता की बात की जाये तो यही कहा जा सकता है कि प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, धात्य, तर्क एवं समाधि में केवल ध्यान एवं और प्राणायाम का अनुपालन लोक जीवन में बहुतायत से देखा जाता है। बाबा रामदेव द्वारा प्रचारित योग एवं उनके द्वारा प्रेरित लोकजीवन षडङ्ग योग से इन दोनों अङ्गों को जवीन की परिकल्पना बस अपनाता है यहाँ तक की 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने के पीछे स्वस्थ समाज की परिकल्पना शामिल है। जिसमें भारत का योगदान किसी से छिपा नहीं है। रही प्रत्याहार धारणा तर्क की बात उनकी महत्ता में कमी दिखाई पडती है। एवं समाधि केवल साधु सन्तों के मध्य की सीमित हो चुका है।

संदर्भ

1. तं० वि० आ० 4६16 पृ० 11
2. गुह्यसमाज तन्त्र (18६140)
3. विष्णु संहिता (30६61-72)
4. त्रयमन्तरङ्ग पूर्वभ्यः (यो० सू० 3-8)
5. तेदषा धारणाध्यान समाधित्रितयी परम्। संविदं प्रति नो कंचिदुपयोगं समश्नुते ॥ तं० आ० 4६95
6. योगाङ्गता यमादेस्तु समाध्यन्तस्य वर्णयते। स्वपूर्वपूर्वोपायत्वादन्त्यतर्कोपयोगतः। तं० आ० 4६96
7. अन्तः संविदि रूढ हि तद्द्वारा प्राणदेहयोः। बुद्धौ वार्यं तद्भ्यासान्धैष न्यापस्तु संविदि ॥ तं० आ० 4६97
8. अन्तः संविदि यन्निरूढमभितस्तत्राणधी विग्रहे, संचार्येत कथं तथेति घटते तत्राभ्युपायक्रमः ये त्वभ्यासपथेन संविदमिमां संस्कृर्तुमभ्युद्यता स्ते किं कुत्र कथं नु वा विदधतामित्यत्र संदिह्यहे ॥ तं० वि० 4६97 पृ० 76
9. (क) अथ बास्मद्दृशि प्राणधी देहादेरपि स्फुटम्। सर्वात्मकत्वात्तत्रस्थाऽप्यभ्यासोऽन्यव्यपाहनम् ॥ तं० आ० 4६98 (ख) प्रदेशोऽपि ब्रह्मणः सार्वरूप्यमनतिक्रान्तश्चाविकल्पश्च। तं० वि० आ० 4६98 पृ० 77
10. देह उत्प्लुतिसंपात धर्मोज्जिगमिषारसात्। उत्पलाव्यते तद्विपक्षपाताशङ्काव्यपोहनात् ॥ तं० आ० 4६99
11. गुरुवाक्यपदामर्शसदृशे स्वविमर्शने। प्रबुद्धे तद्विपक्षाणां व्युदासः पाठयिन्तने ॥ तं० आ० 4६100
12. नह्यस्य गुरुणा शक्यं स्व ज्ञानं शब्द एव वा। धियि शेषयितुं तेन स्वप्रबोध क्रमो ध्रुवम् ॥ तं० आ० 4६101
13. द्वैतशङ्काश्च तर्केण तर्क्यन्त इति वर्णितम्। तत्तर्क साधनायास्तु यमादेरप्युपायता ॥ तं० आ० 4६105
14. (क) द्वैतशङ्काश्च तर्केण तर्क्यन्त इति वर्णितम्। तत्तर्क साधनायास्तु यमादेरप्युपायता ॥ तं० आ० 4६105 (ख) अनेन लक्षयेद्योगी गोगसिद्धिप्रवर्तकम्। निवर्तकं च यद्वस्तु बहुधा संव्यवस्थितम् ॥ तं० वि० 4६105 पृ० 81